# मानवतावादी कबीर की समन्वय साधना

*डॉ. आर.पी. वर्मा,*
*एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,*
*राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,*
*जनपद–उन्नाव, उ.प्र.*

सृष्टि परिवर्तनशील है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का क्रमिक आगमन होता रहता है। इसी प्रकार हर्ष–विषाद, उन्नति–अवनति, प्रकाश–अंधकार और अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि का क्रमिक चक्र चलता रहता है। मानव–मन में भी तर्क–वितर्क का क्रम चलना स्वाभाविक है। दो भिन्न और विपरीत विचारों में पहुँच कर मनुष्य अंतर्द्वद्व से घिर जाता है। सृश्टि ौर समाज के दो विरोधी भाव और विचार जहाँ आंदोलन के सूत्रपात के कारण बन जाते हैं, वहीं उनका समन्वय उनकी गतिशीलता का मार्ग प्रशस्त करता है।

समन्वय का महत्व सर्वत्र देख सकते हैं। शुद्ध और प्रभावी भाषा के लिए वक्ता की चेतना, बुद्धि और मनन–तीनों का समन्वय अनिवार्य होता है। समन्वय का स्वरूप जितना आकर्षक होता है, उद्भूत भाषा का स्वरूप उतना ही भास्वर होता है। पपित बीज को जब समन्वित ऊष्मा, प्रकाश और पानी प्राप्त होता है, तो अंकुरण प्रभावी होता है। इसके विपरीत इनमें से किसी एक की भी प्रतिकूलता अंकुरण को शिथिल कर सकती है। मानव–जीवन का उद्भव, सृष्टि का विकास भी विविध परिस्थितियों को समन्वय में ही संभव है।

डॉ0 गणपतिचंद गुप्त ने संघर्ष को सृष्टि के उद्भव का आधार न मानकर समन्वय को महत्व दिया है, 'सृष्टि के विकास का रहस्य क्या है? प्रसिद्ध चिंतक कार्ल–मार्क्स ने इसके उत्तर में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया है, किंतु हमारी दृष्टि से सृष्टि के उद्भव एवं विकास का मूल 'संघर्ष' नहीं समन्वय है।''' सच है संसार के सृजन और उसकी गतिशीलता में समन्वय का ही मूल भाव होता है। संघर्ष में भी समन्वय का प्रबल स्रोत विद्यमान होता है। निर्माण का आधार समन्वय है। क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा। पाँच तत्वों के समन्वित स्वरूप पर ही मानव शरीर की रचना संभावित है। बच्चा जन्म पाकर माता–पिता ओर परिवार से समन्वित हो बढ़ता है। परिवार का विकास और उन्नति का आधार है। इसके विपरीत विडंबना की स्थिति सामने आती है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने असफलता के मूल में ऐसे विषम भाव की ओर गंभीरता से संकेत किया है–

**''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,**

**इच्छा क्यों पूरी ही मन की।**

**दूसरे से न मिल सकूँ,**

**यह विडंबना है जीवन की।''**

कबीर का आगमन उस समय हुआ, जब भारतवर्ष दासता की कारा में लक्ष्यहीन था, मानवता भटक रही थी। चारों ओर उठती विद्वेष की लपटों में मानव छटपटा रहा था और मानवता कराह रही थी। हिंसा और अत्याचार की तपन में सहजता और व्यावहारिकता अन्वेषण की चीज बन गई थी। मुगलों के शासन में शासक ओर शासित के बीच विरोध भाव बढ़ता जा रहा था। क्रूर शासक के अत्याचार से चारो ओर निराशा के घने बादल घिरे हुए थे। बाह्याडंबर और रूढ़ियों से समाज खोखला हो रहा था। धर्म के नाम पर खिंची

भेदक रेखाएँ, द्वेष के आधार पर उभरता अत्याचार, आनाचार; लोलुपता के आधार पर उभरती दुष्प्रवृत्तियों और अहंकार में उभरता पंगु व्यक्तिवाद समाज को जर्जर कर रहा था। सत्य, अहिंसा और धर्म के धुँधलाते स्वर में भाई–भाई की पहचान धूमिल हो रही थी। ऐसे समय कबीर का आगमन हुआ। विषम और विरोधी परिस्थितियों में कबीर के जन्म को भी दो भिन्न संदर्भों से जोड़ा गया है। एक मत के अनुसार विधवा ब्राहमणी के कोख से जन्म के बाद पालन–पोषण जुलाहा परिवार में हुआ। दूसरी किंवदंती के अनुसार लहरतारा के मुस्कराते कमल की पंखुड़ियों से चमत्कारिक रूप में कबीर का मुस्कराता बाल रूप सामने आया है। कबीर के जन्म का मूल क्या है, स्पष्ट रूप में कह पाना कठिन है, किंतु इतना अवश्य है कि दिव्यभाव संपन्न कबीर सामान्य ही नहीं कठिन जीवन जीते हुए समाज के पथ–प्रदर्शक सिद्ध हुए है। मानव के द्वारा ईश्वर को भी विभिन्न नामों और आकारों में बाँटते और उसके लिए लड़ते हुए देख कबीर घायल हुए थे। उन्होंने निर्गुण–भक्ति के आधार पर समाज को एक मानवीय धारा में लाने का प्रेरक प्रयास किया है।

कबीर ने समाज में अनुकूलता और गतिशीलता लाने के लिए बहुकोणीय समन्वय का आवाह्न किया है। उनके मन मे मानवता का सुखद और प्रेरक परिवेश बनान की कामना रही है। उन्होंने मानव मूल्य के संरक्षण के लिए बहुविधि समन्वय का प्रयास किया है।

कबीर ने मनुष्य में आत्मविश्वास जगाने के लिए आत्मा और परमात्मा के समन्वय का मनोहारी स्वरूप प्रस्तुत किया है। यहाँ कबीर ने रहस्य के गंभीर भाव को भी पूर्ण सहज अैर सरल रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह कबीर के व्यक्तित्व और उनके काव्य की विशेषता है, जो समन्वय के धरातल पर पहुँचाकर जनमानस को अनूठा आत्मविश्वास प्रदान करती है–

**'जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।**

**फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तथ कथोपग्यानी।।''**

आदर्श समाज की कल्पना को साकार की धुनि में विचरण करने वाला, ज्ञान की अलख जगाने वाला कबीर राममय हो चुका है। उसे परम सत्ता का दीदार हो चुका है। ऐसे में उसका भौतिक स्वरूप भी अब महत्वहीन हो गया है, सच है ऐसा समन्वय ही भक्ति का चरम उत्कर्ष और भक्त की सफलता का परिचायक होता है। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता में भौतिक धरातल पर अलौकिकता की अनुपेय उपलब्धि हो रही है–

**'तं तू करता तूं भया, मुझ में रही न हूँ।**

**वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं।।''**

संसार की भौतिकता मनुष्य के मन को चंचल बनाकर तत्व–चिंतन में बाधा खड़ी करती है। मन–पंछी मोह–माया, ईर्ष्या–द्वेष और राग–द्वेष के अंधड़ में बहने लगता है। ऐसे में लोलुपता और भौतिक प्यास के थपेड़ों से घायल होना भी स्वाभाविक है। समाज–सुधारक कबीर ने झंझा और तूफान से बाहर होने वाले गुरूको संसार–सरोवर का सबसे बड़ा नाविक माना है। क्रान्तिकारी कबीर ने ईश्वर और गुरू का समन्वय नहीं किया वरन् इस आधार पर निर्गुण और सगुण का भी समन्वय किया है।

**''गुरू गोविन्द तो एक है, दूजा यह आकार।**

**आपा भेंट जीवत मरै, तो पावे करतार।।''**

गुरू और ईश्वर को एकाकार कर फिर बुरू की महिमा को गाते हुए कवि अधाता ही नहीं। उसका विश्वास है कि गुरू की कृपा से संसार का कंटकाकीर्ण मार्ग पार किया जा सकता है–

**सतगुरू की महिमा अनत, अनत किया उपकार।**

**लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावण हार।।''**

विधाता पाँच तत्वों से मानव शरीर की रचना कर आत्मा का संचार करता है, किंतु उसका ही दिव्य रूप–गुरू उस शरीर का संस्कार करता है। ऐसे गुरू के प्रति विनयावत भाव से कबीर कहता है–

**गुरू कुंभार सिख कुंभ है, गढ़ि–गढ़ि काढ़े खोट।**

**भीतर हाथ संभार दे, बाहर–बाहर चोट।।**

ज्ञानार्जन के सच्चे मार्ग की ओर संकेत करते हुए सहृदय कवि ने गुरुता संपन्न व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करने का आह्न किया है। सच है, यही श्रद्धाभाव मनुष्य को मानवता प्रदान करता है–

**गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।**

**बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिया बताय।**

समन्वयवादी कबीर ने पूर्व विचारों और संस्कारित जीवन जीने वाले व्यक्तियों को विशेष आदर दिया है। निश्चय ही ईश्वर सृष्टि–रचयिता है। गुरू और ईश्वर दोनों अभिन्न हो जाते हैं, किंतु कबीर गुरू के सशरीरी दिव्य व्यक्तित्व को निराकार ब्रहम से भी बड़ा मानते हैं। उन्होंने जन–मन को उद्‌बोधित करते हुए कहा है–

**कबीर ते नर अंध है, गुरू को कहते और।**

**हरि रूठे गुरू ठौर है, गुरू रूठे नहिं ठौर।।**

समाज के महान सचेतक कबीर ने चारों और फैले ब्राह्मांडर, ओढ़ी हुई जिंदगी जीने वालों, मुखौटों में चेहरा ढंकने वालों, कथनी–करनी से सम्बन्ध विच्छेद कर दूसरों और अंधकूप में पहुँचाने वालों की भीड़ को देख कर सावधान किया है–

**जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंथ।**

**अंधू अंधा ठेलिया दोनों कूप पडंत।।**

समन्वय के पावन मार्ग को प्रतिष्ठित करने के लिए कबीर ने पहले सारे ब्राह्मांडबर को छोड़ने का उद्‌घोष किया है। हिंदु और मुस्लिम के बीच खड़ी ऊँची दीवार को समसता के बहाव में ढहाने के लिए सोत्साह निर्भीकता से प्रहान किया है। ऐसा निर्भय व्यक्तित्व सृष्टि में कभी–कभी अवतरित होता है। दो भिन्न और विरोधी मतों से आपस में टकराने वालों की अच्छी खबर ली है। हिंदुओ की मूर्ति–पूजा जिसमें कठोरता, मानवता की अपेक्षा और अपनत्व का अभाव हो, उसका खुल कर विरोध किया–

**'दुनिया कैसी बावरी पत्थर पूजन जाय।**

**घर की चकिया कोउ न पूजे, जिसका पीसा खा।।**

मन को दूषित, निम्न और विषम विचारों के झंखाड़ को साफ कर सहजता का मार्ग दिखाता हुआ कवि कहता है–

**मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे,**

**क्या तेरा साहिब बहिरा है।**

मन के अनुकूल पर राम और रहीम का समन्वय कर धर्म और सम्प्रदाय के भेदों से ऊपर उठ कर मानवता के प्रेरक वातावरण बनाने की ओर संकेत करता हुआ कवि कहता है–

**कहैं कबीर यह मुत्रणां झूठा, राम–रहीम सबनि में दीठा।।**

समन्वय का कैसा मनभावन स्थल है, जहाँ दो दिव्य विचार–धाराओं का संगम मानवता का वितान तान देता है–

**काबा फिर कासी भया, राम भया रहीम।।**

निर्गुण निराकरण का परम उपासक कबीर जब साकार की आभा से आभासित होता है, तो विनयावत होकर कह उठता है–

**''हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।''**

**"दुलहिन गावहु मंगलचार,**

**हम घर आए राजा राम भरतार।"**

**"हरि जननी मैं बालक तेरा।"**

इस प्रकार सतगुण और निर्गुण का मनोहारी समन्वय हो जाता है। यहाँ तो ऐसा लगने लगता है कि कबीर सगुणेपासक है, किंतु सच यह है कि मानवतावादी कवि हैं, जिसमें समन्वय की भाव–लहर मचलती रही है। विचारणीय प्रश्न है कि जिस विधाता को कबीर निर्गुण कहते हैं, उनके ही गुणों को अपरंपार भी बताते हैं। कल्पनातीत गुणों की चर्चा करते हुए कहते हैं–

**"सात समुंद्र को मसि करौ, लेखनी सब बनराइ।**

**धरती सब कागद करौ, हरि गुण लिखा न जाई।।"**

संत कबीर का जीवन–दर्शन कर्म पर आधारित है। वे ताने–बाने से कपड़ा बना कर समाज का शरीर ढकना चाहते थे, किन्तु इस प्रयास में ही वे तार–तर हो गए। इतने होने पर भी वह महात्मा हार नहीं मानता। उसने तो विवादों में घिरे दार्शनिकों को भी समन्वय का मार्ग दिखाता है। इससे द्वैत–अद्वैत आदि वादों को एक धरातल पर आने का अवसर मिला है–

**एका कहौ तो है नहीं, दोय कहौ तो गारि।**

**है जैसा–वैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।**

आत्मा और परमात्मा के एकाकार होने पर अलौकिक भाव जग जाता है और संचार प्रभावहीन हो जाता है। वास्तव में समन्वय की यह स्थिति अपनी चरम परिणति पर पहुँच जाती है। ऐसे में हृदय दिव्य भावों में भर जाता है, आँखों में 'नूर' का निवास हो जाता है और कदम स्वतः ही सन्मार्ग पर चल पड़ते हैं–

**"कबिरा रेख सिंदूर की काजल दिशा न जाय।**

**नैना रमइया रमि रहा, दूजा कहाँ समाय।**

संत कबीर ने भाषा का जो सहज समन्वित रूप अपनाया है, वह संत के ही अनुरूप है। जिस प्रकार संत 'सार–सार को गहि रहे थोथा देह उड़ाय' विचार से गतिशील रहता है। उसी प्रकार इनकी भाषा पंचमेल स्वादिष्ट खिचड़ी है या जग की कुशलता चाहने वाले सधुक्कड़ी–भाव से समन्वित है। भारतीय भाषाओं का संगम कबीर की भाषा में है। हिंदी की विविध बोलियों का सहज रंग सर्वत्र मिलता है–

ब्रज – 'जब थे मोर तोर पहचाना।'

राजस्थानी – 'जीभड़िया छाला पड्या पंथ निहारि–निहारि।'

अवधी – 'पकरी बिलाई मुरगै खाई।'

भोजपुरी – 'फूल फल झूलल मलिन भल गांथल।'

मानवतावादी कबीर समन्वय के जिस आकर्षक मंदिर में सभी धर्मों, संप्रदायों और जातियों के सदस्यों को आमंत्रित करते हैं उसकी छत आसमान है, दसों दिशाएँ दीवार है और हरी–हरी घास ही ही उसकी फर्श है। बस आवश्यकता है मन से बुराईयों को त्याग कर आगे बढ़ाने की। उनके अनुप्रेरक विचार अपनाने योग्य है–

**'कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठा हाथ।**

**जो घर फूंके आपनी चले हमारे साथ।।'**

सच है, साहित्य जगत में कबीर सा व्यक्तित्व दुर्लभ है, जिसमें अनुपम मस्ती, अनुकरणीय निर्भीकता और स्वभाव में मनभावन फक्कड़पन है। सब की बुराइयों को छुड़ा कर एक धरातल पर लाकर मोहर संसार बनाने वाला कबीर धन्य था। वह मानवतावादी कवि समाज का अग्रदूत और मानवता का महान उपासक था। 'बसुधैव कुटुंबकम्' उनके जीवन का मूल मंत्र था।

## संदर्भ


- डॉ0 गणपति चंद्र, साहित्य निबंध।
- जयशंकर प्रसाद, कामायनी।
- डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर ग्रंथावली।
- डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर ग्रंथावली।
- डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर ग्रंथावली।
- डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर ग्रंथावली।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र ।


*Copyright © 2018, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*